प्रवचन-२०१, गाथा-१७०, श्लोक २८५, रविवार, आषाढ़ कृष्ण ७, दिनांक ०३-०८-१९८०

नियमसार १६९ गाथा का आधार है। आधार।

(अपरवक्त्र)

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।
इति जिन सकलज्ञ-लाञ्छनं वचनमिदं वदताम्वरस्य ते।।

समन्तभद्रस्वामी कृत स्तुति है। **हे जिनेन्द्र! तू वक्ताओं में श्रेष्ठ है;...** जितने वक्ता कहलाते हैं, उनमें यह श्रेष्ठ है। '**चराचर (जंगम तथा स्थावर) जगत प्रतिक्षण (प्रत्येक समय में) उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणवाला है**'... इसका अर्थ कि जानते हैं। आहाहा! अनन्त पदार्थ के एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव। समय एक और तीन। आहाहा! सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, वह एक समय। समय एक, देखना तीन को। प्रभु! यह आपके सर्वज्ञ का चिह्न है। समझ में आया? न्याय से लिया है।

हे जिनेन्द्र! तू वक्ताओं में श्रेष्ठ है; 'चराचर (जंगम तथा स्थावर) जगत प्रतिक्षण (प्रत्येक समय में) उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणवाला है' ऐसा यह तेरा वचन... है। ऐसा आपका वचन है अर्थात् आप जानते हैं। जानते हो तो वह आपका वचन है, नाथ! एक समय में... समय का भाग नहीं पड़ता। एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। एक सेकेण्ड में असंख्य समय। ऐसा एक समय और प्रत्येक पदार्थ के तीन बोल—उत्पाद-व्यय-ध्रुव। समय एक और तीन को जानते हैं, ऐसे अनन्त तीन को जानते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्तर विश्वास के लिये यह बात है।

समय एक और अनन्त जो वस्तु है, उस प्रत्येक वस्तु को एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव ऐसी एक समय में उसकी तीन अवस्था है। एक समय में उन तीन को तीन काल को जाने। एक समय में तीन को तीन काल को (जाने)। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? समन्तभद्रस्वामी का वचन है। वह **तेरा वचन (तेरी) सर्वज्ञता का चिह्न है।** सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा कोई कह नहीं सकता। आहाहा!

एक समय में एक द्रव्य की उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन अवस्था। ऐसे अनन्त द्रव्य हैं। उन अनन्त द्रव्यों की उत्पाद-व्यय-ध्रुव की अनन्त अवस्था। वह एक समय में ज्ञात

होती है, ऐसा जो तुम्हारा वचन है, प्रभु! वह सर्वज्ञ का चिह्न है। आहाहा! वह सर्वज्ञ का लक्षण है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त (यह बात कहीं नहीं है)। एक समय में दो भाग नहीं होते। छोटे में छोटा काल एक समय और जगत की एक चीज के तीन भाग और ऐसे अनन्त पदार्थों के तीन भाग। साधारण बात नहीं है। आहाहा! लॉजिक से तत्त्व को सिद्ध करने से विश्वास आता है। प्रभु! तुम ऐसे केवलज्ञानी, ऐसा का ऐसा मान ले, ऐसा नहीं। परन्तु ऐसा केवलज्ञान है, जो एक समय में प्रत्येक पदार्थ में, अवस्था में तीन भेद नहीं। वस्तु के तीन भेद हैं। ऐसी अनन्त अवस्था के तीन भेद हैं। आहाहा! वह अवस्था तीन भेद अनन्त। ऐसा जो तुम्हारा वचन है, प्रभु! वह तुम्हारा सर्वज्ञ का वचन है। आहाहा! डाह्याभाई!

यहाँ सर्वज्ञ को सिद्ध करते हैं। सर्वज्ञ में बहुत शंका करते हैं न? यह क्रमबद्ध आने के पश्चात् सर्वज्ञ में भी (लोग) शंका करते हैं। समय-समय में जो होनेवाली हो, वह होगी, आगे-पीछे नहीं, तो केवलज्ञान में भी शंका करते हैं। केवलज्ञान भी जाने... यहाँ तो कहते हैं... अनन्त काल की उत्पाद-व्यय की पर्याय, अनन्त द्रव्य की, अनन्त उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय में (जाने)। आहाहा! भाषा सरल है। भाव (गम्भीर है)।

एक समय में तीन काल के तीन लोक के द्रव्य जो तीन स्वरूप हैं, उन्हें एक समय में अनन्त को आप जानो, वह आपका सर्वज्ञ का चिह्न है। आहाहा! समझ में आया? भाषा सादी है, तत्त्व रहस्य विशाल है। समन्तभद्राचार्य को बड़ा कहना है। ओहोहो! प्रभु! तुम्हारा वचन ऐसा है कि एक समय में हम तीन काल को जानते हैं। एक समय में तीन काल की समय-समय की तीन पर्यायें, ऐसी अनादि-अनन्त, ऐसी अनन्त पर्याय... आहाहा! ज्ञान में ज्ञात होती है, ऐसा आपका वचन है, प्रभु! हम जानते हैं कि आप सर्वज्ञ का वह चिह्न है। उससे सर्वज्ञ सिद्ध होते हैं। सर्वज्ञ के बिना ऐसा कोई जान नहीं सकता। समझ में आया? भाषा सादी है परन्तु अन्दर सर्वज्ञ की सिद्धि करते हैं।

स्वतः स्वभाव, सर्वज्ञ का स्वतः स्वभाव एक समय में। एक द्रव्य में तीन। एक समय का भाग नहीं और पदार्थ में तीन भाग। ऐसे अनन्त पदार्थों के तीन भाग। समय का भाग नहीं। एक समय के दो भाग नहीं हो सकते। ऐसे एक समय में अनन्त उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय में तीन काल-तीन लोक में होते हैं। आहाहा! वह प्रभु आपका-सर्वज्ञ का चिह्न है। आहाहा! अरे! एक भी भाव बैठना चाहिए न! एक भी (भाव) यथार्थ जैसा है, वैसा (बैठना चाहिए)। सुने वह अलग बात है। आहाहा!

चारित्र का दोष हो, वह भी अलग बात है। आहाहा! क्योंकि क्षायिक समकित होता है, तो भी भरत को छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं। छियानवें हजार स्त्रियाँ और क्षायिक समकित, तो समकित के दोष में वह चारित्र का दोष लागू नहीं पड़ता। आहाहा! प्रभु की बात सूक्ष्म है, भाई! यह तो एक गुण का दोष दूसरे गुण में लागू नहीं पड़ता और दूसरा गुण जो ज्ञान या श्रद्धा एक समय की, एक समय में द्रव्य में तीन भाग, समय का भाग नहीं और यहाँ भाग... आहाहा! ऐसे अनन्त पदार्थ, उत्पाद-व्यय और ध्रुव की अनन्त पर्यायें, एक की तो अनेक परन्तु अनेक की अनेक, ऐसी एक समय में आप जानते हो। आहाहा! प्रभु! यह सर्वज्ञ का लक्षण है। आपका वचन यह बताता है कि आप सर्वज्ञ हो। भाषा सादी है परन्तु अन्दर गर्भ (रहस्य है)। आहाहा!

जानने में काल की आवश्यकता नहीं कि दो समय हो, तीन समय हो तो जाने। जानने में जाननेयोग्य चीज़ एकरूप ही हो तो जाने, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! जानने में एक समय में जाननेयोग्य में एक-एक द्रव्य में तीन भाग, ऐसे तीन काल के तीन भाग... आहाहा! प्रभु! वह सर्वज्ञ है, ऐसा बताता है। आपकी वाणी सर्वज्ञपना सिद्ध करती है। आहाहा! गजब बात है। साधारण लोगों को लगता है कि यह क्या है? बहुत गूढ़ता है।

काल छोटा, वस्तु बड़ी और वह एक-एक समय में तीन भागवाली। एक-एक समय में तीन भागवाली। ऐसे अनन्त समय, अनन्त पदार्थ, एक पदार्थ में तीन भाग। एक समय में भाग नहीं पड़ते और जानते हैं। ऐसे अनन्त पदार्थ जो अनन्त गुणे... आहाहा! समन्तभद्रस्वामी ने न्याय रखा है। गजब किया है।

एक समय, प्रभु! और तीन काल के पदार्थ वे तो भले अनन्त हैं, परन्तु उन पदार्थों में एक समय में तीन भाग। उन सहित भविष्य की भी उत्पाद-व्यय और ध्रुव; भूतकाल के उत्पाद-व्यय और ध्रुव; वर्तमान में उत्पाद-व्यय और ध्रुव—ऐसी जो अनन्त चीज़, उसे समय के भाग किये बिना वह सब भागवाली चीज़ एक समय में ज्ञात होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : महिमा तो ज्ञान की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

धारसीभाई! जैन में भी सर्वज्ञ में शंका पड़ गयी। क्रमबद्ध की बात आयी न, क्रमबद्ध की। क्रम से अर्थात् जिस समय में होनेवाली है वह। सर्वज्ञ देखते हैं, वैसा होवे

तो केवली वर्तमान और भविष्य का जानते हैं कि है इतना। परन्तु किस समय में कौन सी पर्याय होगी, ऐसा नहीं। केवली को माननेवाले ऐसी शंका करने लगे। समझ में आया? एक भी बोल अन्दर यथार्थ (बैठना चाहिए)। आहाहा! एक समय में एक द्रव्य की तीन अवस्था। एक समय के भाग नहीं पड़ते। ऐसे अनन्त पदार्थ भूत के, भविष्य के, वर्तमान के। प्रभु! एक समय में आप जानते हो। वह आपका सर्वज्ञ का वचन, वह आपका सर्वज्ञ का वचन सत्य है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? बारम्बार कहने में अन्दर गूढ़ता है। आहाहा! ऐसे का ऐसा मान ले कि भगवान तीन काल को जानते हैं, ऐसी बात तो अनन्त बार (सुनी है)।

अपनी एक समय की पर्याय, उसमें उत्पाद-व्यय और ध्रुव, ऐसे अनन्त पदार्थ में एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव। समय के भाग नहीं और एक के तीन भाग। ऐसे अनन्त-अनन्त पदार्थों के भाग। आहाहा! अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु इससे अनन्तगुणे। ओहोहो! आकाश सर्व-व्यापक, परन्तु एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव। प्रभु! आपका ज्ञान जानता है, ऐसा आपने कहा। प्रभु! बराबर है। आपका वचन यथार्थ है। अरे! यह यथार्थ वस्तु बैठे, उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? ऊपर से साधारण बात करे तो ऐसी नहीं है। आहाहा!

आप किस प्रकार जानते हो? अपने में जानते हो। कितने काल में? एक समय में। कितने को? अनन्त भंगवाली उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली चीज़ एक समय में। ऐसी अनन्त चीज़ों को-सबको आप जानते हो। प्रभु! आप सर्वज्ञ हो, इसकी हमें प्रतीति हो गयी। आहाहा! आप सर्वज्ञ हो। इस स्थिति में आप सर्वज्ञ हो, ऐसी प्रतीति हमें हो गयी। आहाहा! बात साधारण नहीं है। भगवान तीन काल को जानते हैं... तीन काल को जानते हैं... समय एक, उसके दो भाग नहीं। आहाहा! एक समय के असंख्य समय, एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, उसमें एक समय, ऐसे तीन काल के समय। एक समय का भाग नहीं और भागवाली चीज़ें अनन्त... आहाहा! एक साथ एक ही भागवाली चीज़ नहीं। एक चीज़ अनन्त भागवाली। उत्पाद-व्यय और ध्रुव ऐसे तीन भागवाली। आहाहा! प्रभु! आपने कहा कि हम यह जानते हैं। यह आपका-सर्वज्ञ का वचन है। प्रभु! आप सर्वज्ञ हो, इसका हमें निर्णय हो गया। आहाहा! प्रभु! आप सर्वज्ञ हो। दूसरा कोई त्रिकाल

में सर्वज्ञ ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा! ऐसे केवलज्ञान के अतिरिक्त किसी को ऐसा केवलज्ञान है नहीं, प्रभु! ऐसी हमें प्रतीति हो गयी। आपने वचन कहा कि हम तीन काल को जानते हैं और समय एक है। जाना कि यह तो सर्वज्ञ हैं। आहाहा! बात ऐसी है। बात सादी है परन्तु सादी में गूढ़ता बहुत है, भाई! आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान अनन्त-अनन्त हो गये। उन अनन्त सर्वज्ञों की अनन्त पदार्थ के भागवाली, एक समय में भाग बिना अनन्त सिद्ध और अनन्त केवली जानते हैं। प्रभु! यह विश्वास कोई अलग प्रकार का है। आहाहा! यह बात नहीं। उसका विश्वास...

मुमुक्षु : महिमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अलौकिक। आहाहा! गजब काम किया है! उस दिन देखा, तब ऐसा कहते कि ओहोहो! समन्तभद्राचार्य यही कहना चाहते हैं।

प्रभु! आप सर्वज्ञ हो, ऐसा हमने निर्णय किया है। किस प्रकार? आधार से। एक समय और तीन काल में अनन्त पदार्थ और एक-एक पदार्थ में एक समय में तीन भाग, एक समय में भाग नहीं और एक पदार्थ में तीन भाग, ऐसे अनन्त पदार्थ भागवाले। आप एक समय में भाग बिना जानते हो। आहाहा! प्रभु! ऐसे केवलज्ञानी आपके अतिरिक्त दुनिया में दूसरे कोई है नहीं। आहाहा! दूसरे सर्वज्ञ और केवली और बहुत नाम धराते हैं, परन्तु प्रभु! आपका जो चिह्न है, वह ख्याल में आ गया कि आप ही सर्वज्ञ हैं। इस स्थिति में। इसके अतिरिक्त कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! यह भाषा इतनी है और भाव (गूढ़ है।) आहाहा!

उत्पाद-व्यय और ध्रुव लक्षण। तीन। ऐसा यह **तेरा वचन (तेरी) सर्वज्ञता का चिह्न है।** प्रभु! आहाहा! एक समय में सर्वज्ञ हो सकते हैं। यह आपका वचन हमें प्रतीति में आ गया। क्योंकि एक समय में भाग नहीं और भागवाली चीज़ अनन्त, उसे एक समय में जाने, वही आपका सर्वज्ञपना है, वही आपका सर्वज्ञपना है। आहाहा! समझ में आया? बारम्बार कहने में कुछ गूढ़ता बतानी है। बात गूढ़ है, भगवान! सर्वज्ञ को मानना, यह बात... आहाहा! वह विकल्प से माने, यह नहीं। धारणा से माने, यह नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली हुए। एक समय में तीन काल प्रत्यक्ष देखते हैं। प्रभु! आप सर्वज्ञ हो, इसका हमें विश्वास आया। यह

न्याय से हमें विश्वास आ गया। इसमें शंका को स्थान नहीं है। आहाहा! गजब बात है। भाषा सादी है, भाव गम्भीर है। आहाहा!

अपने सन्मुख देखे तो खबर पड़े। ओहोहो! अपने सन्मुख में समयान्तर में ज्ञानान्तर हो जाता है। आहाहा! यह क्या कहा? मिथ्याज्ञान में से सम्यग्ज्ञान एक समय के अन्तर में हो जाता है। समयान्तर। पहले समय में ज्ञान, दूसरे समय में ज्ञान। आहाहा! प्रभु! यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव आपने कहा भिन्न-भिन्न समय में, तो यह बात सिद्ध हो गयी। आहाहा! पहले समय में भले मिथ्याज्ञान हो और दूसरे समय में सम्यग्ज्ञान हो जाए। उत्पाद हुआ और उत्पाद दूसरे समय में व्यय होता है। आहाहा! और उसका आधार द्रव्य है, तथापि वह तीनों बिना किसी काल नहीं रहता। उत्पाद, उत्पाद के कारण से; व्यय, व्यय के कारण से; ध्रुव, ध्रुव के कारण से। प्रवचनसार में आया है। उत्पाद ध्रुव के कारण से नहीं; व्यय ध्रुव के कारण से नहीं; व्यय उत्पाद के कारण से नहीं। आहाहा!

एक ओर ज्ञान-भगवान, एक ओर ज्ञेय, उसका विषय। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... भागवाला विषय। एक द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो आपने कहा न? उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा तो सब द्रव्यों में उत्पाद-व्यय-ध्रुव हुए। तो तीन काल-तीन लोक में उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली एक-एक चीज़ के तीन भाग हो गये। ऐसे अनन्त काल में अनन्त भाग हुए। आहाहा! आपको एक समय में भाग है नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! कब विचार किया है वहाँ पैसे के कारण?

यह चीज़... आहाहा! सर्वज्ञ आत्मा सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा सर्वज्ञ है। क्योंकि ऐसे सर्वज्ञ की जो श्रद्धा करता है, उसकी श्रद्धा में भी एक समय में अन्तर पड़ जाता है। पहली श्रद्धा पहले समय में दूसरी थी, दूसरे समय में दूसरी हो जाती है। सम्यग्दर्शन में भी अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उत्पाद-व्यय और ध्रुव आपने एक साथ देखा है तो जब सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, तब मिथ्यात्व का व्यय होता है। व्यय होता है तो उत्पाद भी होता ही है। उत्पाद होता है तो ध्रुव भी रहता ही है। आहाहा! आधे घण्टे चला। वैसे तो तीन लाईनें हैं। तीन पूरी नहीं हैं। आधी है। आहाहा!

क्या प्रभु की वाणी! कहीं दुनिया में नहीं है। किसी स्थान में ऐसी वाणी नहीं है। यह भी दिगम्बर पन्थ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी एक समय में पहले

ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन-देखते हैं, ऐसा कहते हैं और श्वेताम्बर (सम्प्रदाय) कालद्रव्य को मानता नहीं। उसका हेतु अन्तर में रहस्य क्या है ? बहुत वर्ष पहले कहा था कि अपनी पर्याय में काल बदला नहीं है। अपना स्वकाल बदला नहीं तो परकाल की प्रतीति हुई नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में स्वकाल बदले तो परकाल की प्रतीति आये बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है प्रभु का। आपकी तो कितनी शक्ति से पहुँचे! आहाहा! सर्वज्ञ जब इसकी बात करे, चार ज्ञान के धनी गणधर जब बात करे... आहाहा! एक शब्द में कितना भरा हो कि भगवान उसका स्पष्टीकरण और गणधर उसका स्पष्टीकरण करे। दूसरे की ताकत नहीं है। आहाहा! यह गाथा हुई।

श्लोक-२८५

और (इस १६९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(वसंततिलका)

जानाति लोक-मखिलं खलु तीर्थ-नाथः,
स्वात्मान-मेक-मनघं निज-सौख्य-निष्ठम्।
नो वेत्ति सोऽय-मिति तं व्यवहार-मार्गाद्,
वक्तीति कोऽपि मुनिपो न च तस्य दोषः ।।२८५।।

(वीरछन्द)

वास्तव में सम्पूर्ण लोक को जानें तीर्थनाथ भगवान।
एक अनघ निज सुख में स्थित है जो निज ज्ञायक भगवान-
उसे न जानें तीर्थनाथ वे - ऐसा यदि कोई मुनिराज।
कहते हैं व्यवहार मार्ग से, तो नहिं दोषी वे मुनिराज॥२८५॥

[श्लोकार्थः—] तीर्थनाथ वास्तव में समस्त लोक को जानते हैं और वे एक, अनघ (निर्दोष), निजसौख्यनिष्ठ (निज सुख में लीन) स्वात्मा को नहीं जानते—ऐसा कोई मुनिवर व्यवहारमार्ग से कहे तो उसे दोष नहीं है।२८५।

श्लोक - २८५ पर प्रवचन

और (इस १६९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

जानाति लोक-मखिलं खलु तीर्थ-नाथः,
स्वात्मान-मेक-मनघं निज-सौख्य-निष्ठम् ।
नो वेत्ति सोऽय-मिति तं व्यवहार-मार्गाद्,
वक्तीति कोऽपि मुनिपो न च तस्य दोषः ।।२८५।।

आहाहा! क्या कहते हैं ? **तीर्थनाथ वास्तव में समस्त लोक को जानते हैं और वे एक, अनघ (निर्दोष), निजसौख्यनिष्ठ (निज सुख में लीन) स्वात्मा को नहीं जानते—** क्या कहते हैं ? - कि आनन्द में लीन हैं, तो आत्मा को नहीं जानते, पर को जानते हैं। ज्ञान का स्वभाव है कि आनन्द में लीन होने पर भी पर को तो जानते हैं। आहाहा! तथापि आत्मा को नहीं जानते, ऐसा कोई व्यवहार से कहे तो क्या दोष है ? समझ में आया ?

फिर से। **तीर्थनाथ वास्तव में समस्त लोक को जानते हैं और वे एक, अनघ (निर्दोष), निजसौख्यनिष्ठ (निज सुख में लीन) स्वात्मा को नहीं जानते—ऐसा कोई मुनिवर व्यवहारमार्ग से कहे तो उसे दोष नहीं है।** आहाहा! यह बात ही कोई... अपने स्वरूप में लीन हैं तो पर को भले जाने। ज्ञान का स्वभाव है। वह भले उपयोग इस ओर हो तो भी ज्ञान का स्वभाव है तो पर को जानते हैं। परन्तु अपने में लीन हैं तो अपने को नहीं जानते, ऐसा कोई व्यवहार पक्षवाला कहे तो उसमें क्या दोष है ? आहाहा! अटपटी बात है।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि भगवान तो स्व-पर दोनों को जानते हैं, यह तो तीसरा मनुष्य कहनेवाला ऐसा कहता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहता है परन्तु व्यवहार से ऐसा सत्य है। ऐसा कहना है। तीसरा व्यक्ति भले कहे परन्तु उसका कहना सच्चा है। किस अपेक्षा से ? आहाहा! तीसरा कहता है चाहे जो परन्तु किस अपेक्षा से ? कि निर्दोष निजसौख्यनिष्ठ। आनन्द में लीन है। भगवान तो आनन्दगुण में लीन हैं। आहाहा! साथ में रहा हुआ ज्ञानगुण, वह ज्ञानगुण भले दूसरे को जाने परन्तु वह यहाँ आत्मा लीन है तो अपने को नहीं जानता, ऐसा कोई व्यवहारनय से कहे तो उसमें कोई दोष नहीं है। कठिन बात है, भगवान! यह तो वीतराग

के शास्त्र हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर दिगम्बर के शास्त्र अर्थात् परमेश्वर की वाणी। साक्षात् श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि। आहाहा! वह कहीं साधारण शब्दों की बात नहीं है। बहुत गूढ़ है। वार्ता नहीं, कथा नहीं, तत्त्व का रहस्य है। आहाहा!

क्या कहा? कि आत्मा आनन्द में लीन है। आनन्द में लीन है तो आनन्द में जानने की शक्ति नहीं है। ज्ञान का भाव है तो आनन्द में लीन है, तो भी ज्ञान पर को जाने। पर को जानने का भाव है। उस आनन्द में लीन है परन्तु पर को जानने की बात कुछ चली जाती है? क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! यहाँ भी जब आत्मा निर्विकल्प ध्यान में आता है, तब ज्ञान में पर का जानना चला जाता है? समझ में आया? पर के ऊपर लक्ष्य नहीं है, उपयोग नहीं है। आहाहा! क्या कहा? अपने स्वरूप में जहाँ ध्यान में लीन है, तब ज्ञान का स्वभाव तो है। पहले जो ज्ञान में जाना है, वह ध्यान में है तो ज्ञात हुआ, उसका नाश होता है? क्या कहा? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

यह बहिन के अक्षर उत्कीर्ण होनेवाले हैं, भाई! सुना है न? हसमुखभाई की ओर से ग्यारह हजार रुपये और भाई की ओर से हीराभाई की ओर से छह हजार दिगम्बर मन्दिर हैं, उन प्रत्येक मन्दिर में एक-एक पुस्तक देना। यह बहिन का है न, बहिन की पुस्तक। पूरे हिन्दुस्तान में छह हजार दिगम्बर मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर में बहिन की एक-एक पुस्तक देना। आहाहा! पहले कहा था। जब हाथ में आयी, तब रामजीभाई को कहा था। तीस लाख पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं परन्तु किसी पुस्तक के लिये हमने कहा नहीं कि छपाओ या करो। कुछ कहा नहीं। परन्तु यह पुस्तक जब हाथ में आयी तो ऐसा कहा, रामजीभाई! एक लाख पुस्तक छपाओ। उसमें लगभग छिहत्तर हजार तो प्रकाशित हो गयी है। आहाहा! लोग पक्षपात छोड़कर जरा विचार करे कि सत्य क्या है? कैसा होना चाहिए? यह ख्याल रखे तो ख्याल आवे। नहीं तो ख्याल आवे नहीं। आहाहा! हरिभाई नहीं? गये लगते हैं। आये नहीं। तबीयत बराबर नहीं? ठीक नहीं होगा। सवेरे भी नहीं थे। सवेरे भी अलौकिक बात थी। अभी भी है। आहाहा!

जयसेनाचार्य में एक ऐसा लेख है कि कोई भी एक भाव पूरा अन्दर, उसका रहस्य... एक भाव जाने तो सब भाव जाने। ऐसा पाठ है। एक भाव, कोई भी एक भाव। यह सर्वज्ञ, उत्पाद-व्यय-ध्रुव आहाहा! अपने में लीन... ज्ञान का स्वभाव तो पहले पर को बहुत जाना था। जानने में लीन है, इतना ही लिया है? समझ में आया? अन्दर ध्यान

में आया परन्तु जो ज्ञान में पर को पहले जाना था, वह जानने का कहीं चला गया है ? तो जानते हैं। परन्तु अन्तर में लीन हैं... आहाहा! है ?

निजसौख्यनिष्ठ (निज सुख में लीन) स्वात्मा को नहीं जानते—आहाहा! क्या कहना है ? आनन्द में रहते हैं, उन्हें अपने ज्ञान का ख्याल नहीं। उस ज्ञान में पर को जानना भले रहा, परन्तु अपने आनन्द में लीन है तो उसे जानना वहाँ रहा नहीं। आनन्द में लीन है। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! वीतराग की वाणी अलौकिक! अलौकिक!! दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। कितने ही लोगों को दुःख लगता है। श्वेताम्बर या स्थानकवासी को। प्रभु! यह वाणी कहीं है नहीं। यह वाणी कृत्रिम नहीं है। दूसरों ने तो कृत्रिम बनाया हुआ है और कहीं कोई गहरे-गहरे तर्क करने जाए तो मिलान नहीं खाता। यहाँ तो चाहे जितना गहरा तर्क करने जाए, वहाँ बात सिद्ध होती है। आहाहा! चाहे जिस एक बात को स्पष्ट करने जाए तो वह बात सिद्ध ही होती है। आहाहा! यह ऐसी बात है। आहाहा! भाग्यशाली को कान में पड़े, वह वाणी है। आहाहा!

मुमुक्षु : महाभाग्यशाली को, अकेले भाग्यशाली नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाभाग्यशाली। आहाहा!

मुमुक्षु : आज का व्याख्यान तो बहुत गूढ़, गम्भीर और सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, वहाँ यह गहरा कहना है। आहाहा!

तीर्थनाथ वास्तव में समस्त लोक को जानते हैं और वे एक, अनघ (निर्दोष), निजसौख्यनिष्ठ (निज सुख में लीन) स्वात्मा को नहीं जानते—आहाहा! **ऐसा कोई मुनिवर व्यवहारमार्ग से कहे...** देखो! व्यवहारनय है, उसका विषय भी है। नय है तो विषयी है। विषयी है, उसका विषय है, परन्तु आदरणीय नहीं है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि व्यवहारनय से कोई ऐसा कहे कि पर को जानते हैं और अपना आत्मा आनन्द में है तो अपने को नहीं जानते तो उसे क्या कहना ? व्यवहारनय से कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : व्यवहारनय का विषय पर है...

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं जानूँ, वहाँ रहा नहीं। आनन्द में है और पर का जानना तो अन्दर ज्ञान में था, वह रह गया है। वह कहीं चला नहीं गया है। ध्यान में, आनन्द में आ गये, इसलिए पर का जानना, क्षयोपशम में पर्याय में था, वह कहीं चला नहीं गया। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा!

गाथा-१७०

णाणं जीव-सरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
अप्पाणं ण वि जाणदि अप्पादो होदि विदिरित्तं।।१७०।।

ज्ञानं जीव-स्वरूपं तस्माज्जानात्यात्मकं आत्मा।
आत्मानं नापि जानात्यात्मनो भवति व्यतिरिक्तम्।।१७०।।

अत्र ज्ञानस्वरूपो जीव इति वितर्केणोक्तः। इह हि ज्ञानं तावज्जीवस्वरूपं भवति, ततो हेतोरखण्डाद्वैतस्वभावनिरतं निरतिशयपरमभावनासनाथं मुक्तिसुन्दरीनाथं बहिर्व्यावृत्तकौतूहलं निजपरमात्मानं जानाति कश्चिदात्मा भव्यजीव इति अयं खलु स्वभाववादः। अस्य विपरीतो वितर्कः स खलु विभाववादः प्राथमिकशिष्याभिप्रायः। कथमिति चेत्, पूर्वोक्त-स्वरूपमात्मानं खलु न जानात्यात्मा, स्वरूपावस्थितः सन्तिष्ठति। यथोष्णस्वरूपस्याग्नेः स्वरूपमग्निः किं जानाति, तथैव ज्ञानज्ञेयविकल्पाभावात् सोऽयमात्मात्मनि तिष्ठति। हंहो प्राथमिकशिष्य अग्नि वदयमात्मा किमचेतनः। किम्बहुना। तमात्मानं ज्ञानं न जानाति चेद् देवदत्तरहितपरशुवत् इदं हि नार्थक्रियाकारि, अत एव आत्मनः सकाशाद् व्यतिरिक्तं भवति। तन्न खलु सम्मतं स्वभाववादिनामिति।

तथा चोक्तं श्री गुणभद्रस्वामिभिः -

(अनुष्टुप्)

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकाङ्क्षन् भावयेज्ज्ञानभावनाम्।।

तथाहि

है ज्ञान जीव स्वरूप इससे जीव जाने जीव को।
निज को न जाने ज्ञान तो वह आतमा से भिन्न हो॥१७०॥

अन्वयार्थ : [ज्ञानं] ज्ञान [जीवस्वरूपं] जीव का स्वरूप है, [तस्मात्] इसलिए

[आत्मा] आत्मा [आत्मकं] आत्मा को [जानाति] जानता है; [आत्मानं न अपि जानाति] यदि ज्ञान आत्मा को न जाने तो [आत्मनः] आत्मा से [व्यतिरिक्तम्] व्यतिरिक्त (पृथक्) [भवति] सिद्ध हो!

टीका : यहाँ (इस गाथा में) 'जीव ज्ञानस्वरूप है' ऐसा वितर्क से (दलील से) कहा है।

प्रथम तो, ज्ञान वास्तव में जीव का स्वरूप है; उस हेतु से, जो अखण्ड अद्वैत स्वभाव में लीन है, जो [१]निरतिशय परम भावना सहित है, जो मुक्तिसुन्दरी का नाथ है और बाह्य में जिसने [२]कौतूहल व्यावृत्त किया है (अर्थात् बाह्य पदार्थों सम्बन्धी कुतूहल का जिसने अभाव किया है) ऐसे निज परमात्मा को कोई आत्मा—भव्य जीव—जानता है।—ऐसा यह वास्तव में स्वभाववाद है। इससे विपरीत वितर्क (-विचार) वह वास्तव में विभाववाद है, प्राथमिक शिष्य का अभिप्राय है।

वह (विपरीत वितर्क—प्राथमिक शिष्य का अभिप्राय) किस प्रकार है ? (वह इस प्रकार है:—) ''पूर्वोक्तस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) आत्मा को आत्मा वास्तव में जानता नहीं है, स्वरूप में अवस्थित रहता है (-आत्मा में मात्र स्थित रहता है)। जिस प्रकार उष्णतास्वरूप अग्नि के स्वरूप को (अर्थात् अग्नि को) क्या अग्नि जानती है ? (नहीं ही जानती।) उसी प्रकार ज्ञानज्ञेय सम्बन्धी विकल्प के अभाव से यह आत्मा आत्मा में (मात्र) स्थित रहता है (-आत्मा को जानता नहीं है)।''

(उपरोक्त वितर्क का उत्तरः—) ''हे प्राथमिक शिष्य! अग्नि की भाँति क्या आत्मा अचेतन है (कि जिससे वह अपने को न जाने) ? अधिक क्या कहा जाये ? (संक्षेप में,) यदि उस आत्मा को ज्ञान न जाने तो वह ज्ञान, देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भाँति, *अर्थक्रियाकारी सिद्ध नहीं होगा, और इसलिए वह आत्मा से भिन्न सिद्ध होगा!

१- निरतिशय=कोई दूसरा जिससे बढ़कर नहीं है ऐसी; अनुत्तम; श्रेष्ठ; अद्वितीय।

२- कौतूहल=उत्सुकता; आश्चर्य; कौतुक।

* अर्थक्रियाकारी=प्रयोजनभूत क्रिया करनेवाला। (जिस प्रकार देवदत्त के बिना अकेली कुल्हाड़ी अर्थक्रिया—काटने की क्रिया—नहीं करती, उसी प्रकार यदि ज्ञान आत्मा को न जानता हो तो ज्ञान ने भी अर्थक्रिया—जानने की क्रिया—नहीं की; इसलिए जिस प्रकार अर्थ क्रियाशून्य कुल्हाड़ी देवदत्त से भिन्न है। उसी प्रकार अर्थक्रियाशून्य ज्ञान आत्मा से भिन्न होना चाहिए! परन्तु वह तो स्पष्टरूप से विरुद्ध है। इसलिए ज्ञान आत्मा को जानता ही है।)

वह तो (अर्थात् ज्ञान और आत्मा की सर्वथा भिन्नता तो) वास्तव में स्वभाववादियों को संमत नहीं है। (इसलिए निर्णय कर कि ज्ञान आत्मा को जानता है।)''

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में १७४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

ज्ञानस्वभावी है आतम अरु कहा स्वभाव विनाश विहीन।
ज्ञानभावना भाओ यदि हो अभिलाषा शाश्वत पद की॥

''[श्लोकार्थः—] आत्मा ज्ञानस्वभाव है; स्वभाव की प्राप्ति वह अच्युति (अविनाशी दशा) है; इसलिए अच्युति को (अविनाशीपने को, शाश्वत दशा को) चाहनेवाले जीव को ज्ञान की भावना भाना चाहिए।''

गाथा - १७० पर प्रवचन

---

१७० गाथा।

णाणं जीव-सरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
अप्पाणं ण वि जाणदि अप्पादो होदि विदिरित्तं।।१७०।।

है ज्ञान जीव स्वरूप इससे जीव जाने जीव को।
निज को न जाने ज्ञान तो वह आतमा से भिन्न हो॥१७०॥

पहले हाँ किया, पश्चात् यहाँ निषेध किया। किस नय का वाक्य है? आहाहा! व्यवहारनय है या नहीं? लोकालोक को जानते हैं, वह असद्भूतव्यवहारनय है। असद्भूतव्यवहारनय न हो तो लोकालोक जाने, पर को स्पर्श करे नहीं और जाने, केवलज्ञान पर को स्पर्श करे नहीं और जाने, ऐसा कहना वह तो असद्भूतव्यवहारनय है। तो वह है या नहीं? लोकालोक को व्यवहार से जानते हैं, वह है। भले असद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! अपने को जानते हैं और पर को नहीं जानते, यह निश्चयनय है। आहाहा! और स्व-पर प्रकाशक अपना जो गुण है, वह तो अपने को अपने में जानता है। पर शब्द आया, इसलिए पर को जानता है, ऐसा नहीं है। अपने में परसम्बन्धी और अपने सम्बन्धी जो स्व-

परप्रकाशक (ज्ञान है), वह निश्चय से है। वह निश्चय से है। पर शब्द आया, इसलिए व्यवहार है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और अकेले पर को जाने, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात! सम्प्रदाय में तो यह सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, आत्मा बिना, वर बिना बारात (जोड़ दी है)। वररहित बारात तो लोगों का झुण्ड कहलाता है। अरे! प्रभु! तू कौन है? तेरी सत्ता क्या है? तेरी शक्ति क्या है? तेरे में शक्ति कितनी भरी हुई है? किस नय से तू तुझे जानता है और किस नय से पर को जानता है? और पर को जानने पर भी निश्चय से स्व को जानता है... आहाहा! स्व-पर (जानने का) अपना स्वभाव है तो उस स्व-पर को जानना, वह निश्चय है। परन्तु स्व को छोड़कर अकेले पर को जाने, वह व्यवहार है। आहाहा! यह सब निर्णय करने के लिये फुर्सत नहीं है। आहाहा!

यहाँ क्या कहा?

है ज्ञान जीव स्वरूप इससे जीव जाने जीव को।
निज को न जाने ज्ञान तो वह आतमा से भिन्न हो॥१७०॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में) 'जीव ज्ञानस्वरूप है' ऐसा वितर्क से (दलील से) कहा है। आहाहा! भगवान ने अमृत बरसाया है! मुनियों ने तो अमृत बरसाया है। थोड़े से शब्दों में गहरे भाव भरे हैं। आहाहा! तो भी उन शब्दों के करनेवाले हम नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शब्द की रचना जड़ से होती है, प्रभु! हम तो आत्मा हैं, नाथ! आत्मा जड़ से तो अत्यन्त भिन्न है। जड़ को आत्मा स्पर्श नहीं करता न! आहाहा! भाषा को आत्मा स्पर्श नहीं करता न! भाषा के परमाणु में एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता न। आहाहा! वीतराग का मार्ग तीन लोक-तीन काल में अन्यत्र कहीं है नहीं। सबने कल्पना करके कल्पना से मान लिया है। यह तो प्रत्यक्ष सर्वज्ञ भगवान ने (कहा)... सीमन्धर भगवान साक्षात् विराजते हैं। उन्होंने जो प्रत्यक्ष देखा, वह यह बात है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। साक्षात् सुना है और सुनकर आये और यह कहा। आहाहा! उसमें भी यह शास्त्र स्वयं के लिये बनाया है। समयसार और प्रवचनसार, वह तो सबको समझाने के लिये कहा है। यह स्वयं के लिये बनाया है। स्वयं के लिये यह बनाया है। अन्तिम गाथा है। मेरी भावना के लिये मैंने यह किया है। कुन्दकुन्दाचार्य तीसरे नम्बर में (आते हैं)। भगवान... आहाहा! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं

कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर में आये हैं। आहाहा! गणधर के पश्चात् उनका (नम्बर है)। उनकी वाणी है। आहाहा! गजब है। ऊपर-ऊपर से पढ़ जाए तो इसका मर्म हाथ में नहीं आता। हेमराजजी बराबर आ गये, मौके से आ गये। बात निकली और आ गये हैं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

(इस गाथा में) 'जीव ज्ञानस्वरूप है' ऐसा वितर्क से (दलील से) कहा है। प्रथम तो, ज्ञान वास्तव में जीव का स्वरूप है;... आहाहा! ज्ञान और आत्मा कोई अलग नहीं है। इस अपेक्षा से जीव का स्वरूप है। **उस हेतु से, जो अखण्ड अद्वैत स्वभाव में लीन है,...** जो अखण्ड अद्वैत एक स्वभाव में लीन है। **जो निरतिशय... कोई दूसरा जिससे बढ़कर नहीं है ऐसी; अनुत्तम; श्रेष्ठ; अद्वितीय।** आहाहा! अजोड़ **परम भावना सहित है, जो मुक्तिसुन्दरी का नाथ है...** आहाहा! पूर्णानन्द की परिणति के स्वामी हैं। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। वह पूर्णानन्द की परिणति प्रगट हुई तो उस पूर्णानन्द की परिणति का वह स्वामी हो गया। आहाहा! आनन्द में बाकी रहा नहीं। आहाहा!

मुक्तिसुन्दरी का नाथ है और बाह्य में जिसने कौतूहल व्यावृत्त किया है... आहाहा! **इन्तजार; उत्सुकता; आश्चर्य; कौतुक।** उसे निवृत्त किया है। आहाहा! **(अर्थात् बाह्य पदार्थों सम्बन्धी कुतूहल का जिसने अभाव किया है) ऐसे निज परमात्मा को कोई आत्मा—भव्य जीव—जानता है।—ऐसा यह वास्तव में स्वभाववाद है।** वह वास्तव में स्वभाववाद है। आत्मा आत्मा को जाने, वह स्वभाववाद है। आत्मा पर को जाने, वह सब व्यवहारवाद है। आहाहा! बात साधारण है, परन्तु अन्दर गम्भीरता है। अभ्यास, अभ्यास नहीं। मूल तत्त्व का अभ्यास नहीं होता। ऊपर की बात जानने में रुक जाते हैं।

कुतूहल का जिसने अभाव किया है, ऐसे निज परमात्मा को कोई आत्मा—भव्य जीव—जानता है।—ऐसा यह वास्तव में स्वभाववाद है। अपने को ज्ञान ज्ञान जाने, वह स्वभाववाद है। आहाहा! ज्ञान ज्ञान को जाने, वह स्वभाववाद है। ज्ञान पर को जाने, वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! **इससे विपरीत वितर्क (-विचार) वह वास्तव में विभाववाद है,...** आहाहा! स्वयं अपने को जाने, वह स्वभाववाद है। उससे विपरीत पर को (जाने), वह विभाववाद है। आहाहा! जानने में आता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है परन्तु वह तो असद्भूतव्यवहारनय है। पर को जाने, केवलज्ञानी तीन काल-

तीन लोक को जाने, वह असद्भूतव्यवहारनय है। सद्भूतव्यवहार भी नहीं। आहाहा! राग को जाने, ख्याल में राग आया, उसे जाने, वह असद्भूत उपचारनय है और स्थूल उपयोग है तो राग उस समय ज्ञात होता है, साथ में न ज्ञात हो, उसे जानना, वह असद्भूत अनुपचारनय है। आहाहा! और उस राग को ज्ञान जाने, वह सद्भूत उपचार है और ज्ञान, वह आत्मा है, वह सद्भूत व्यवहार अनुपचार है। आहाहा! ऐसी बात है। ग्यारहवीं गाथा में व्यवहार सब अभूतार्थ कहा है। वह अध्यात्म का व्यवहार। वस्तु वस्तुरूप से है। उसे भेद डालकर कहे कि आत्मा आत्मा को जानता है, उससे क्या सिद्धि है? यह अपने समयसार में आ गया है। उसमें क्या सिद्धि है। अपने को अपने में जाने, आत्मा अपने को जाने, वह भी सद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! भेद है न? ज्ञायक तो ज्ञायक है। आहाहा! यह निश्चय है, यह वास्तविक है। पर्याय कहते हैं।

यह कहते हैं, **ऐसे निज परमात्मा को कोई आत्मा—भव्य जीव—जानता है।—ऐसा यह वास्तव में स्वभाववाद है। इससे विपरीत वितर्क (-विचार) वह वास्तव में विभाववाद है, प्राथमिक शिष्य का अभिप्राय है।** इतना लिया। ऐसा लेंगे... षट्खण्डागम में ऐसा लेते हैं। प्राथमिक शिष्य का यह अभिप्राय है कि दर्शन स्व को देखता है, ज्ञान पर को देखता (जानता है), ऐसा प्राथमिक शिष्य का अभिप्राय है। उसे गुरु समझाते हैं तो यह बात उसे बैठ जाती है। ऐसी बात है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)